छहढाला

पाँचवी ढाल-

१२ भावना

www.JainKosh.org

fppt.com

पाँचवी ढाल की विषय वस्तु

छन्द	विषय वस्तु
1	भावनाओं के चिंतवन के कारण, अधिकारी और फल
2	भावनाओं का फल और मोक्षसुख की प्राप्ति का समय
3-14	१२ भावनायें
15	आत्मानुभवपूर्वक भावलिंगी मुनि का स्वरूप

www.JainKosh.org

fppt.com

छंद

सखी

www.JainKosh.org

fppt.com

भावनाओं के चिंतवन का कारण, उसके अधिकारी और उसका फल

मुनि सकलव्रती बड़भागी भव-भोगनतैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई।।१।।

अन्वयार्थ : (भाई) हे भव्यजीव! (सकलव्रती) महाव्रतों के धारक (मुनि) भावलिंगी मुनिराज (बड़भागी) महान पुरुषार्थी हैं, क्योंकि वे (भोगनतैं) संसार और भोगों से (वैरागी) विरक्त होते हैं और (वैराग्य) वीतरागता को (उपावन) उत्पन्न करने के लिए (माई) माता के समान (अनुप्रेक्षा) बारह भावनाओं का (चिन्तैं) चिंतवन करते हैं।

www.JainKosh.org

fppt.com

भावनाओं के चिंतवन का कारण, उसके अधिकारी और उसका फल

मुनि सकलव्रती बड़भागी भव-भोगनतैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई।।१।।

भावार्थ : पाँच महाव्रतों को धारण करनेवाले भावलिंगी मुनिराज महापुरुषार्थवान हैं; क्योंकि वे संसार, शरीर और भोगों से अत्यन्त विरक्त होते हैं; और जिसप्रकार कोई माता पुत्र को जन्म देती है, उसीप्रकार ये बारह भावनाएँ वैराग्य उत्पन्न करती हैं, इसलिये मुनिराज इन बारह भावनाओं का चिंतवन करते हैं।

www.JainKosh.org

fppt.com

अनुप्रेक्षा

अनु+प्र+ईक्षा

अनु= बारम्बार, अनुसरण करता हुआ

प्र= प्रकृष्ट रूप से

ईक्षा= चिंतन करना

www.JainKosh.org

fppt.com

अनुप्रेक्षा

भेदज्ञानपूर्वक

संसार, शरीर और भोगादि के स्वरूप का

बारम्बार विचार करके

उनके प्रति उदासीनभाव उत्पन्न करना

www.JainKosh.org

fppt.com

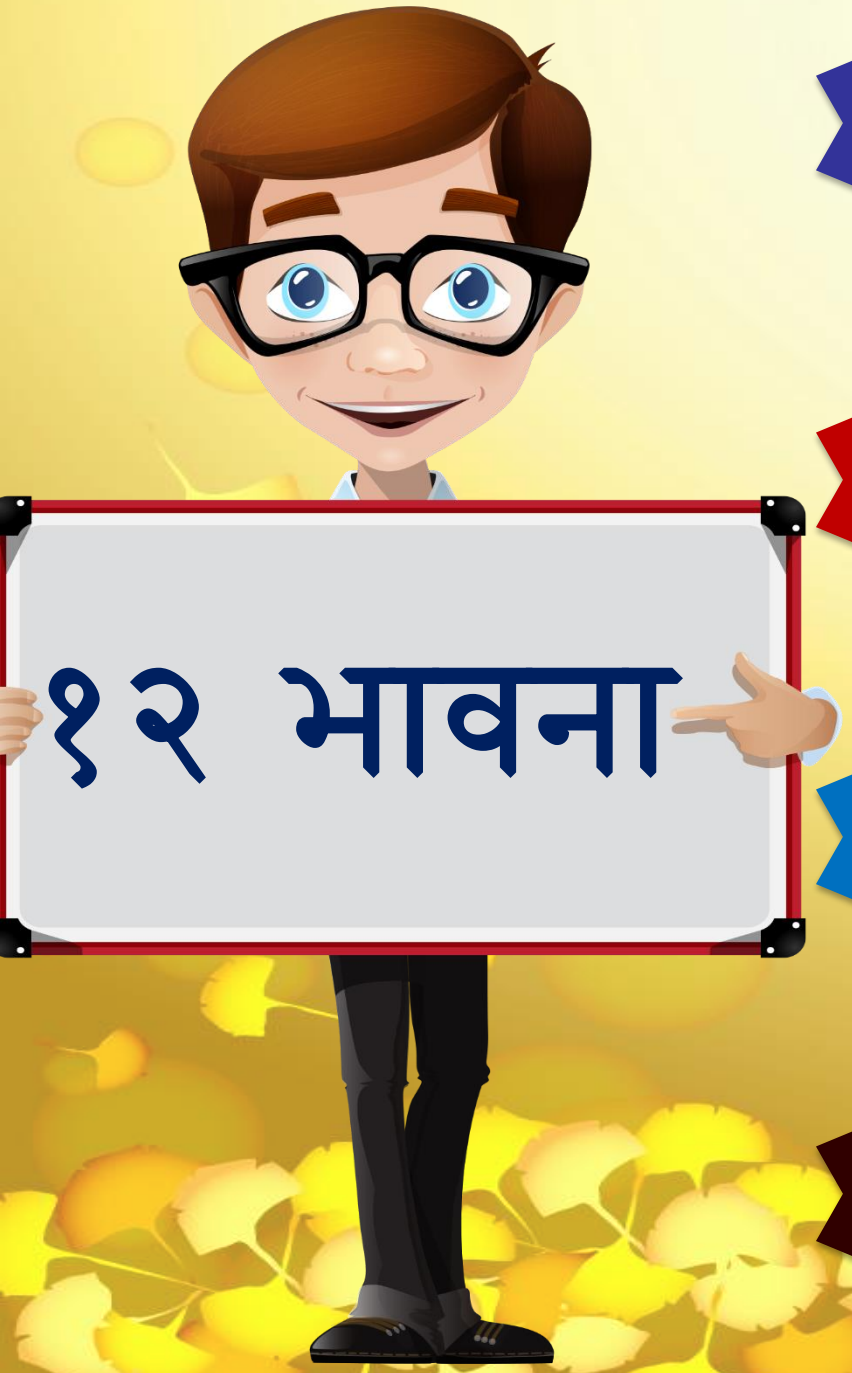

१२ भावना

- अनित्य
- अशरण
- संसार
- एकत्व
- अन्यत्व
- अशुचि
- आस्रव
- संवर
- निर्जरा
- लोक
- बोधिदुर्लभ
- धर्म

www.JainKosh.org

fppt.com

विशेषता

ये चारित्र गुण की आंशिक शुद्ध पर्यायें हैं ।

ये संवर और निर्जरा का कारण हैं ।

www.JainKosh.org

fppt.com

१२ भावना

६ भावनायें वैराग्यपरक

- अनित्य
- अशरण
- संसार
- एकत्व
- अन्यत्व
- अशुचि

६ भावनायें तत्त्वपरक

- आस्रव
- संवर
- निर्जरा
- लोक
- बोधिदुर्लभ
- धर्म

www.JainKosh.org

fppt.com

६ भावनायें

परोन्मुखता का भाव समाप्त कर अन्तरोन्मुख होने के लिये प्रेरित करती है

आस्रव भावना

संयोगाधीन दृष्टि से उत्पन्न मिथ्यात्वादि विकारों से विरक्ति उत्पन्न करती है

५ भावनायें

निज शुद्धात्मतत्त्व के प्रति समर्पित होने का मार्ग प्रशस्त करती है

www.JainKosh.org

fppt.com

भावनाओं का फल और मोक्षसुख की प्राप्ति का समय

इन चिन्तत सम-सुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै।।२।।

अन्वयार्थ : (जिमि) जिसप्रकार (पवन के) वायु के (लागै) लगने से (ज्वलन) अग्नि (जागै) भभक उठती है, उसीप्रकार (इन) बारह भावनाओं का (चिंतत) चिंतवन करने से (सम-सुख) समतारूपी सुख (जागै) प्रकट होता है। (जब ही) जब (जिय) जीव (आतम) आत्मस्वरूप को (जानै) जानता है, (तब ही) तभी (जीव) जीव (शिवसुख) मोक्षसुख को (ठानै) प्राप्त करता है।

www.JainKosh.org

fppt.com

भावनाओं का फल और मोक्षसुख की प्राप्ति का समय

इन चिन्तत सम-सुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै।।२।।

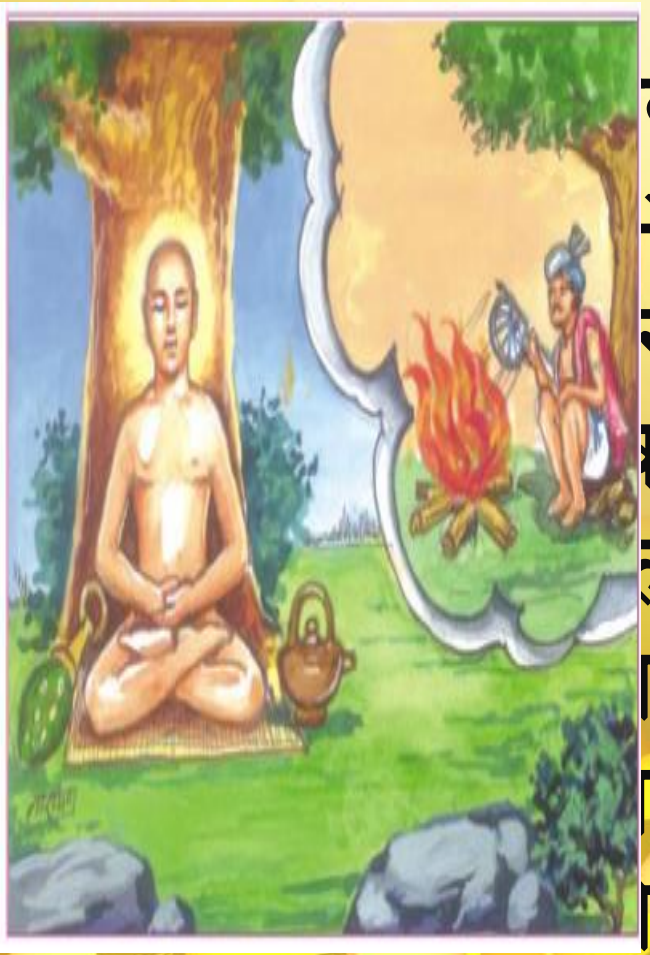

वार्थ : जिसप्रकार वायु लगने से अग्नि एकदम
नक उठती है, उसीप्रकार इन बारह भावनाओं का
रंबार चिंतवन करने से समता शांतिरूपी सुख
कट हो जाता है बढ़ जाता है। जब यह जीव
षार्थपूर्वक परपदार्थों से सम्बन्ध छोड़कर
त्मस्वरूप को जानता है, तब परमानन्दमय
स्वरूप में लीन होकर समतारस का पान करता है
र अंत में मोक्षसुख प्राप्त करता है।२।

www.JainKosh.org

fppt.com

१२ भावनायें क्यों भाना?

- भेद विज्ञान के लिये
- पर द्रव्यों के प्रति राग भाव गल जाता है
- वीतरागता की वृद्धि होती है
- कषाय की आग्नि बुझती है
- विपत्तियों में धैर्य और संपत्ति में विनम्रता प्रदान करती है

www.JainKosh.org

fppt.com

अनित्य भावना-

- जिन संयोगों में हम राग करते हैं वे क्षणभंगुर हैं

अशरण भावना-

- संयोग अशरण हैं
- वियोग होना संयोगों का सहज स्वभाव है

संसार भावना-

- संयोग निरर्थक, सारहीन हैं

www.JainKosh.org

fppt.com

एकत्व भावना-

- दुख मिल बाँटकर नहीं भोगे जा सकते, अकेले ही भोगने होंगें

अन्यत्व भावना-

- सुख दुख में कोई साथ नहीं दे सकता है

अशुचि भावना-

- स्वदेह और परदेह दोनो ही मलिन है अपवित्र है

www.JainKosh.org

fppt.com

आस्रव भावना-

- आत्मा में उत्पन्न रागादि आस्रवरूप होने से दुखरूप हैं, आत्मा ही सुखरूप है

संवर भावना–

- भेदविज्ञान और आत्मानुभूति की मुख्यता से चिंतवन किया जाता है

निर्जरा भावना-

- शुद्धोपयोग की साधना की भावना भाई जाती है

www.JainKosh.org

fppt.com

लोक भावना-

- अनादि अनन्त स्वयंप्रतिष्ठित लोक में हम अनादिकाल से अनन्त दुख उठा रहे हैं

बोधिदुर्लभ भावना-

- लोक में सब संयोग तो अनन्त बार हुये पर एक रत्नत्रय दुर्लभ है

धर्म भावना-

- रत्नत्रय की आराधना ही मनुष्यभव का सार है

www.JainKosh.org

fppt.com

१ अनित्य भावना

जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।३।।

अन्वयार्थ : (जोबन) यौवन, (गृह) मकान, (गौ) गाय-भैंस, (धन) लक्ष्मी, (नारी) स्त्री, (हय) घोड़ा, (गय) हाथी, (जन) कुटुम्ब, (आज्ञाकारी) नौकर-चाकर तथा (इन्द्रिय-भोग) पाँच इन्द्रियों के भोग ये सब (सुरधनु) इन्द्रधनुष तथा (चपला) बिजली की (चपलाई) चंचलता-क्षणिकता की भाँति (छिन थाई) क्षणमात्र रहनेवाले हैं।

www.JainKosh.org

fppt.com

१ अनित्य भावना

जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।३।।

भावार्थ : यौवन, मकान, गाय-भैंस, धन-सम्पत्ति, स्त्री, घोड़ा-हाथी, कुटुम्बीजन, नौकर-चाकर तथा पाँच इन्द्रियों के विषय ये सर्व वस्तुएँ क्षणिक हैं अनित्य हैं नाशवान हैं। जिसप्रकार इन्द्रधनुष और बिजली देखते ही देखते विलीन हो जाते हैं, उसीप्रकार ये यौवनादि कुछ ही काल में नाश को प्राप्त होते हैं। वे कोई पदार्थ नित्य और स्थायी नहीं हैं, अपितु निज शुद्धात्मा ही नित्य और स्थायी है।

ऐसा स्वोन्मुखतापूर्वक चिंतवन करके, सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागता की वृद्धि करता है, वह अनित्य भावना है। मिथ्यादृष्टि जीव को अनित्यादि एक भी भावना यथार्थ नहीं होती।।३।।

www.JainKosh.org

fppt.com

अनित्य

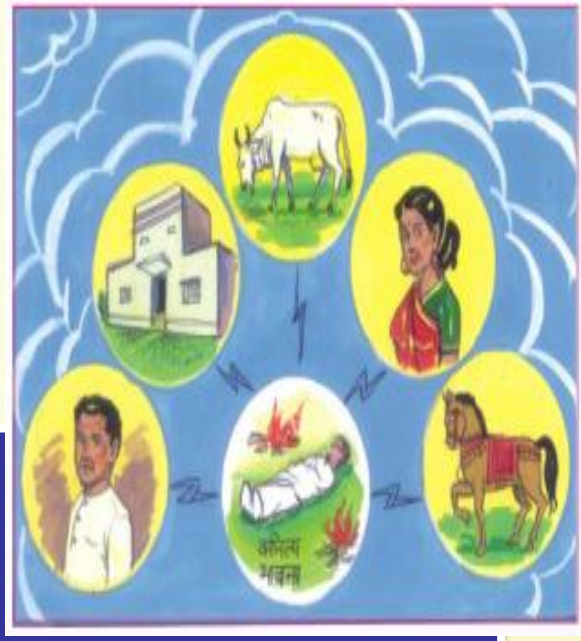

संयोग, भोग, पर्यायें ये सभी अनित्य हैं

जिन संयोगों में हम अपनत्व और ममत्व रखकर उन्हें स्थाई रखना चाहते हैं वे सब अनित्य है

एक अपना आत्म द्रव्य ही ध्रुव है

fppt.com

२. अशरण भावना

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि, काल दले ते।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई।।४।।

अन्वयार्थ : (सुर असुर खगाधिप) देवों के इन्द्र, असुरों के इन्द्र और खगेन्द्र (जेते) जो-जो हैं, (ते) उन सबका (मृग हरि ज्यों) जिसप्रकार हिरन को सिंह मार डालता है; उसीप्रकार (काल) मृत्यु (दले) नाश करता है। (मणि) चिन्तामणि आदि मणिरत्न, (मंत्र) बड़े-बड़े रक्षामंत्र; (तंत्र) तंत्र, (बहु होई) बहुत से होने पर भी (मरते) मरनेवाले को (कोई) वे कोई (न बचावै) नहीं बचा सकते।

www.JainKosh.org

fppt.com

२. अशरण भावना

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि, काल दले ते।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई।।४।।

भावार्थ : इस संसार में जो-जो देवेन्द्र, असुरेन्द्र, खगेन्द्र (पक्षियों के राजा) आदि हैं, उन सबका जिसप्रकार हिरन को सिंह मार डालता है, उसीप्रकार काल (मृत्यु) नाश करता है। चिंतामणि आदि मणि, मंत्र और जंत्र-तंत्रादि कोई भी मृत्यु से नहीं बचा सकता।

यहाँ ऐसा समझना कि निज आत्मा ही शरण है; उसके अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है। कोई जीव अन्य जीव की रक्षा कर सकने में समर्थ नहीं है; इसलिये पर से रक्षा की आशा करना व्यर्थ है। सर्वत्र-सदैव एक निज आत्मा ही अपना शरण है। आत्मा निश्चय से मरता ही नहीं; क्योंकि वह अनादि अनन्त है ऐसा स्वोन्मुखतापूर्वक चिंतवन करके सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागता की वृद्धि करता है, वह अशरण भावना है।।४।।

www.JainKosh.org

fppt.com

अशरण

शरण खोजी जाती है -

मृत्यु से बचने के लिये

आकुलता-व्याकुलता से बचकर सुखी होने के लिये

www.JainKosh.org

fppt.com

परन्तु

परिजन, स्थान, शक्ति, धन, दल, डाक्टर, दवाईयां, मंत्र, तंत्र, कल्पवृक्ष

ये सब जीव को अशरण रूप हैं

www.JainKosh.org

fppt.com

क्योंकि

जीव स्वयं अशरण रूप अर्थात असहाय रूप है

उसे किसी की सहायता मिल नहीं सकती है और

उसे किसी की सहायता की जरुरत नहीं है

www.JainKosh.org

fppt.com

- जीव यह मानता है कि मुझे कोई ना कोई बचा लेगा ।
- मेरे पास सब साधन उपलब्ध है, मुझे कैसे कोई मारेगा ।
- इसलिए वह जीवन भर उन साधनों के जुटाने में ही लगा रहता है । (धन, networking आदि)

www.JainKosh.org

fppt.com

अशरण भावना तैयार करवा रही है कि

- कुछ भी हो, ‘मरते ना बचावे कोई’
- आप स्वयं प्रयोग करके निगाह डालकर देख लीजिये

www.JainKosh.org

fppt.com

तो क्या हम मर जाएँ?

- देह की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करना योग्य है
- पर यह सम्यग्ज्ञान भी आवश्यक है कि देह के छूटने पर कोई भी बचा नहीं सकता है ।
- इसलिए साधनों से ज्यादा साधना पर ध्यान दिया जाए ।
- केवल धन आदि जुटाने में ही नहीं लगा जाए ।

www.JainKosh.org

fppt.com

- क्या हमें धन पर अधिक विश्वास है या धर्म पर?
- क्या हमें डॉक्टर की बातों पर अधिक विश्वास है या जिनवाणी की बातों पर?
- क्या हम शरीर को पुष्ट रखना चाहते हैं या स्वयं को?

www.JainKosh.org

fppt.com

ध्यान रखिये

- वास्तव में शुद्धात्मा और उसके बताने वाले पञ्च परमेष्ठी ही वास्तविक शरण हैं ।

www.JainKosh.org

fppt.com

३. संसार भावना

चहुँगति दुःख जीव भरै हैं, परिवर्तन पंच करै हैं।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहि लगारा ।।५।।

अन्वयार्थ : (जीव) जीव (चहुँगति) चार गति में (दुःख) दुःख (भरै है) भोगता है और (पंच परिवर्तन) पाँच परावर्तन पाँच प्रकार से परिभ्रमण (करै है) करता है। (संसार) संसार (सब विधि) सर्व प्रकार से (असारा) सार रहित है, (यामें) इसमें (सुख) सुख (लगारा) लेशमात्र भी (नाहिं) नहीं है।

www.JainKosh.org

fppt.com

३. संसार भावना

चहुँगति दुःख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहि लगारा ।।५।।

भावार्थ : जीव की अशुद्ध पर्याय वह संसार है। अज्ञान के कारण जीव चार गति में दुःख भोगता है और पाँच (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव तथा भाव) परावर्तन करता रहता है, किन्तु कभी शांति प्राप्त नहीं करता; इसलिये वास्तव में संसारभाव सर्वप्रकार से सार रहित है, उसमें किंचित्मात्र सुख नहीं है; क्योंकि जिसप्रकार सुख की कल्पना की जाती है, वैसा सुख का स्वरूप नहीं है और जिसमें सुख मानता है, वह वास्तव में सुख नहीं है; किन्तु वह परद्रव्य के आलम्बनरूप मलिनभाव होने से आकुलता उत्पन्न करनेवाला भाव है। निज आत्मा ही सुखमय है, उसके ध्रुवस्वभाव में संसार है ही नहीं ऐसा स्वोन्मुखता-पूर्वक चिंतवन करके सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागता में वृद्धि करता है, वह ममसंसार भावनाङ्कङ्क है।।५।।

www.JainKosh.org

fppt.com

संसार

संयोगीभाव- विकारी भाव संसार

परद्रव्यों से किया गया स्नेह संसार है

चतुर्गति भ्रमण ही संसार है

www.JainKosh.org

fppt.com

अनुकूल संयोग प्राप्त होने पर भी संसार में सुख की प्राप्ति होना असंभव है क्योंकि

संयोग न तो सुख स्वरूप हैं और न ही दुख स्वरूप है

सुख तो अपने आत्मस्वरूप में ही है

अतः यह संसार सारहीन है

www.JainKosh.org

fppt.com

४. एकत्व भावना

शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगै जिय एक हि ते ते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी।।६।।

अन्वयार्थ : (जेते) जितने (शुभ-अशुभ करमफल) शुभ और अशुभ कर्म के फल हैं, (ते ते) वे सब (जिय) यह जीव (एक हि) अकेला ही (भौगे) भोगता है; (सुत) पुत्र (दारा) स्त्री (सीरी) साथ देनेवाले (न होय) नहीं होते। (सब) यह सब (स्वारथ के) अपने स्वार्थ के (भीरी) सगे (हैं) हैं।

www.JainKosh.org

fppt.com

४. एकत्व भावना

शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगै जिय एक हि ते ते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी।।६।।

भावार्थ : जीव का सदा अपने स्वरूप से और पर से विभक्तपना है; इसलिये वह स्वयं ही अपना हित अथवा अहित कर सकता है, पर का कुछ नहीं कर सकता है। इसलिये जीव जो भी शुभ या अशुभ भाव करता है, उनका फल (आकुलता) वह स्वयं अकेला ही भोगता है; उसमें अन्य कोई स्त्री, पुत्र, मित्रादि सहायक नहीं हो सकते; क्योंकि वे सब परपदार्थ हैं और वे सब पदार्थ जीव को ज्ञेयमात्र हैं, इसलिये वे वास्तव में जीव के सगे-सम्बन्धी हैं ही नहीं; तथापि अज्ञानी जीव उन्हें अपना मानकर दुःखी होता है। पर के द्वारा अपना भला-बुरा होना मानकर पर के साथ कर्तृत्व-ममत्व का अधिकार माना है; वह अपनी भूल से ही अकेला दुःखी होता है।

संसार में और मोक्ष में यह जीव अकेला ही है, ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टि जीव निज शुद्ध आत्मा के साथ ही सदैव अपना एकत्व मानकर अपनी निश्चयपरिणति द्वारा शुद्ध एकत्व की वृद्धि करता है, यह एकत्व भावना है ।६।।

www.JainKosh.org

fppt.com

५. अन्यत्व भावना

जल-पय ज्यों जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा।।७।।

अन्वयार्थ : (जिय-तन) जीव और शरीर (जल-पय-ज्यों) पानी और दूध की भाँति (मेला) मिले हुए हैं, (पै) तथापि (भेला) एकरूप (नहिं) नहीं हैं, (भिन्न-भिन्न) पृथक्-पृथक् हैं (तो) तो फिर (प्रकट) जो बाह्य में प्रकट रूप से (जुदे) पृथक् दिखाई देते हैं ऐसे (धन) लक्ष्मी, (धामा) मकान, (सुत) पुत्र और (रामा) स्त्री आदि (मिलि) मिलकर (इक) एक (क्यों) कैसे (ह्वै) हो सकते हैं?

www.JainKosh.org
fppt.com

५. अन्यत्व भावना

जल-पय ज्यों जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा।।७।।

भावार्थ : जिसप्रकार दूध और पानी एक आकाश-क्षेत्र में मिले हुए हैं, परन्तु अपने-अपने गुण आदि की अपेक्षा से दोनों बिलकुल भिन्न-भिन्न हैं; उसीप्रकार यह जीव और शरीर भी मिले हुए एकाकार दिखाई देते हैं, तथापि वे दोनों अपने-अपने स्वरूपादि की अपेक्षा से (स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से) बिलकुल पृथक्-पृथक् हैं तो फिर प्रकटरूप से भिन्न दिखाई देनेवाले ऐसे मोटरगाड़ी, धन, मकान, बाग, पुत्र-पुत्री, स्त्री आदि अपने साथ कैसे एकमेक हो सकते हैं? अर्थात् स्त्री-पुत्रादि कोई भी परवस्तु अपनी नहीं है इसप्रकार सर्व पदार्थों को अपने से भिन्न जानकर, स्वसन्मुखतापूर्वक सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागता की वृद्धि करता है, वह अन्यत्व भावना है।।७।।

www.JainKosh.org

fppt.com

एकत्व और अन्यत्व

एकत्व -अस्तिपरक है। मैं एक हूँ

अन्यत्व -नास्तिपरक है। देहादि मुझ से भिन्न हैं

निज में एकत्व और पर से अन्यत्व से द्रव्यगत स्वभाव है

www.JainKosh.org

fppt.com

- पदार्थ का एकत्व धर्म है
  - –अहमेक्को खलु सुद्धो, नाहं होमि परेसि, एगो मे सस्सदो
- एकत्व नहीं मानने से हानि
  - –व्यर्थ के पाप, दुःख, ममत्व भाव
- एक का फल दूसरे को मिलता तो है? मिलकर पाप भोगे तो जाते हैं?
- एकत्व का दुरुपयोग
  - –हम सब भोग लेंगे, हमें ही तो भोगना है
- एकत्व से तनाव कैसे?
- एकत्व का प्रयोग कहाँ करना, कहाँ नहीं?

www.JainKosh.org
fppt.com

६. अशुचि भावना

पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादितैं मैली।
नव द्वार बहैं घिनकारी, अस देह करे किम यारी।।८।।

अन्वयार्थ : (जो) (पल) मांस (रुधिर) रक्त (राध) पीव और (मल) विष्टा की (थैली) थैली है, (कीकस) हड्डी, (वसादितैं) चरबी आदि से (मैली) अपवित्र है और जिसमें (घिनकारी) घृणा-ग्लानि उत्पन्न करनेवाले (नव द्वार) नौ दरवाजे (बहैं) बहते हैं (अस) ऐसे (देह) शरीर में (यारी) प्रेम-राग (किमि) कैसे (करै) किया जा सकता है?

www.JainKosh.org

fppt.com

६. अशुचि भावना

पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादितैं मैली।
नव द्वार बहैं घिनकारी, अस देह करे किम यारी।।८।।

भावार्थ : यह शरीर तो मांस, रक्त, पीव, विष्टा आदि की थैली है और वह हड्डी, चर्बी आदि से भरा होने के कारण अपवित्र है तथा नौ द्वारों से मैल बाहर निकलता है ऐसे शरीर के प्रति मोह-राग कैसे किया जा सकता है? यह शरीर ऊपर से तो मक्खी के पंख समान पतली चमड़ी में मढ़ा हुआ है; इसलिये बाहर से सुन्दर लगता है, किन्तु यदि उसके भीतरी हाल तक विचार किया जाये तो उसमें अपवित्र वस्तुएँ भरी हैं; इसलिये उसमें ममत्व, अहंकार या राग करना व्यर्थ है।

यहाँ शरीर को मलिन बतलाने का आशय भेदज्ञान द्वारा शरीर के स्वरूप का ज्ञान कराके, अविनाशी निज पवित्र पद में रुचि करना है, किन्तु शरीर के प्रति द्वेषभाव उत्पन्न कराने का आशय नहीं। शरीर तो उसके अपने स्वभाव से ही अशुचिमय है और यह भगवान आत्मा निजस्वभाव से ही शुद्ध एवं सदा शुचिमय पवित्र चैतन्य पदार्थ है। इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव अपने शुद्ध आत्मा की सन्मुखता द्वारा अपनी पर्याय में शुचिता की (पवित्रता की) वृद्धि करता है वह अशुचि भावना है।।८।।

www.JainKosh.org

fppt.com

अशुचि भावना का चिंतन

शरीर की अशुचिता, राजकुमार स्त्री पर आसक्त, शरीर में दुर्गंध का वास मात्र
एक धागे में शरीर की दुर्गंध प्रत्यक्ष होती है
अस देह करे किम यारी

शरीर को पवित्र करना संभव ही नहीं, जैसे कोयला

आत्मा परम पवित्र है,
रत्नत्रय पवित्र है
स्वभावतो अशुचौ काये...

काना/फीका गन्ना वैसे मनुष्य भव

www.JainKosh.org

fppt.com

७. आस्रव भावना

जो योगन की चपलाई, तातैं है आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे।।९।।

अन्वयार्थ : (भाई) हे भव्यजीव! (योगन की) योगों की (जो) जो (चपलाई) चंचलता है, (तातैं) उससे (आस्रव) आस्रव (है) होता है और (आस्रव) वह आस्रव (घनेरे) अत्यन्त (दुःखकार) दुःखदायक है, इसलिये (बुधिवन्त) बुद्धिमान (तिन्हैं) उसे (निरवेरे) दूर करें।

www.JainKosh.org
fppt.com

७. आस्रव भावना

जो योगन की चपलाई, तातैं है आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे।।९।।

भावार्थ : विकारी शुभाशुभभावरूप जो अरूपी दशा जीव में होती है, वह भाव-आस्रव है और उस समय नवीन कर्मयोग्य रजकणों का स्वयं-स्वतः आना (आत्मा के साथ एक क्षेत्र में आगमन होना) सो द्रव्य-आस्रव है। (उसमें जीव की अशुद्ध पर्यायें निमित्तमात्र हैं।)

पुण्य और पाप दोनों आस्रव और बन्ध के भेद हैं।

पुण्य : दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत आदि शुभराग सरागी जीव को होते हैं; वे अरूपी अशुभ भाव हैं और वह भावपुण्य है। तथा उस समय नवीन कर्मयोग्य रजकणों का स्वयं-स्वतः आना (आत्मा के साथ एक क्षेत्र में आगमन होना), सो द्रव्यपुण्य है। (उसमें जीव की अशुद्ध पर्याय निमित्तमात्र है।)

पाप : हिंसा, असत्य, चोरी इत्यादि जो अशुभभाव हैं; वह भावपाप है और उस समय कर्मयोग्य पुद्गलों का आगमन होना, सो द्रव्यपाप है। (उसमें जीव की अशुद्ध पर्यायें निमित्त हैं।)

परमार्थ से (वास्तव में) पुण्य-पाप (शुभाशुभ) आत्मा को अहितकर हैं तथा वह आत्मा की क्षणिक अशुद्ध अवस्था है। द्रव्य पुण्य-पाप तो परवस्तु हैं, वे कहीं आत्मा का हित-अहित नहीं कर सकते ऐसा यथार्थ निर्णय प्रत्येक ज्ञानी जीव को होता है और इसप्रकार विचार करके सम्यग्दृष्टि जीव स्वद्रव्य के अवलम्बन के बल से जितने अंश में आस्रवभाव को दूर करता है उतने अंश में उसे वीतरागता की वृद्धि होती है; उसे ममआस्रव भावनाङ्कङ्क कहते हैं।।९।।

www.JainKosh.org

fppt.com

८. संवर भावना

जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।।१०।।

अन्वयार्थ : (जिन) जिन्होंने (पुण्य) शुभभाव और (पाप) अशुभभाव (नहिं कीना) नहीं किये तथा मात्र (आतम) आत्मा के (अनुभव) अनुभव में शुद्ध उपयोग में (चित) ज्ञान को (दीना) लगाया है, (तिनही) उन्होंने ही (आवत) आते हुए (विधि) कर्मों को (रोके) रोका है और (संवर लहि) संवर प्राप्त करके (सुख) सुख का (अवलोके) साक्षात्कार किया है।

www.JainKosh.org

८. संवर भावना

जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।।१०।।

भावार्थ : आस्रव का रोकना, सो संवर है। सम्यग्दर्शनादि द्वारा मिथ्यात्वादि आस्रव रुकते हैं। शुभोपयोग तथा अशुभोपयोग दोनों बन्ध के कारण हैं ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव पहले से ही जानता है। यद्यपि साधक को निचली भूमिका में शुद्धता के साथ अल्प शुभाशुभभाव होते हैं; किन्तु वह दोनों को बन्ध का कारण मानता है, इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव स्वद्रव्य के आलम्बन द्वारा जितने अंश में शुद्धता करता है उतने अंश में उसे संवर होता है, और वह क्रमशः शुद्धता में वृद्धि करके पूर्ण शुद्धता (संवर) प्राप्त करता है। यह संवर भावना है।।१०।।

www.JainKosh.org

fppt.com

९. निर्जरा भावना

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै।।११।।

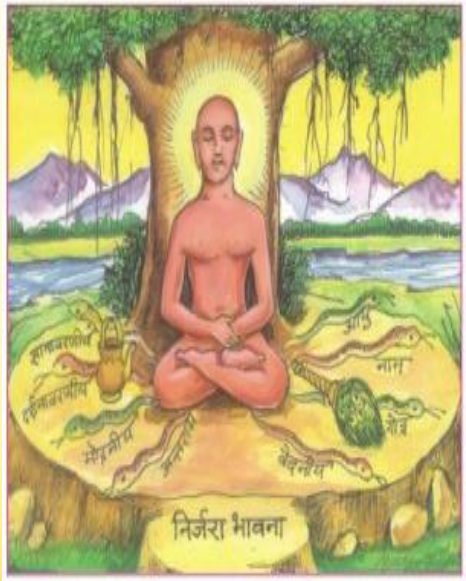

अन्वयार्थ : जो (निज काल) अपनी-अपनी स्थिति (पाय) पूर्ण होने पर (विधि) कर्म (झरना) खिर जाते हैं, (तासों) उससे (निज काज) जीव का धर्मरूपी कार्य (न सरना) नहीं होता; किन्तु (जो) जो (तप करि) तप अर्थात् आत्मा के शुद्ध प्रतपन द्वारा (कर्म) कर्मों का (खिपावै) नाश करती है, (सोई) वह अविपाक अथवा सकाम निर्जरा (शिवसुख) मोक्ष का सुख (दरसावै) दिखलाती है।

www.JainKosh.org

fppt.com

९. निर्जरा भावना

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावे, सोई शिवसुख दरसावे।।११।।

भावार्थ : अपनी-अपनी स्थिति पूर्ण होने पर कर्मों का खिर जाना तो प्रतिसमय अज्ञानी को भी होता है; वह कहीं शुद्धि का कारण नहीं होता, परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा अर्थात् आत्मा के शुद्ध प्रतपन द्वारा जो कर्म खिर जाते हैं, वह अविपाक अथवा सकाम निर्जरा कहलाती है। तदनुसार शुद्धि की वृद्धि होते-होते सम्पूर्ण निर्जरा होती है, तब जीव शिवसुख (सुख की पूर्णतारूप मोक्ष) प्राप्त करता है। ऐसा जानता हुआ सम्यग्दृष्टि जीव स्वद्रव्य के आलम्बन द्वारा जो शुद्धि की वृद्धि करता है, वह निर्जरा भावना है।।११।।

www.JainKosh.org

fppt.com

संवर - निर्जरा

धर्म का आरंभ संवर से होता है

निर्जरा संवर पूर्वक होती है

संवर- शुद्धात्मा की रुचि

निर्जरा- शुद्धात्मा की साधना

www.JainKosh.org

fppt.com

- निर्जरा क्या होती है?
- सविपाक निर्जरा, अविपाक निर्जरा का अर्थ
  - जब हर समय निर्जरा हो ही रही है, तो फिर मुक्त हो ही जायेंगे?
  - दोनों में से कौन-सी भली?
  - क्या कर्म बिना फल दिए छूट सकते हैं?
- 'निज काज' – निज काम कौन-सा है जिसे सिद्ध करना है?

www.JainKosh.org

fppt.com

कैसे हो अविपाक निर्जरा?

- तप के द्वारा
  –इच्छाओं का निरोध
- किसी के अवलंबन से विरोधी बात कामना किया जाता है । वैसे ही आत्मा के अवलंबन से इच्छा का निरोध किया जा सकता है।

www.JainKosh.org

fppt.com

१०. लोक भावना

किनहू न करौ न धरै को, षड् द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमाहिं बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता।।१२।।

अन्वयार्थ : इस लोक को (किनहू) किसी ने (न करौ) बनाया नहीं है, (को) किसी ने (न धरै) टिका नहीं रखा है, (को) कोई (न हरै) नाश नहीं कर सकता; और यह लोकैं (षड् द्रव्यमयी) छह प्रकार के द्रव्यस्वरूप है छह द्रव्यों से परिपूर्ण है (सो) ऐसे (लोकमाहिं) लोक में (बिन समता) वीतरागी समता बिना (नित) सदैव (भ्रमता) भटकता हुआ (जीव) जीव (दुख लहै) दुःख सहन करता है।

www.JainKosh.org
fppt.com

१०. लोक भावना

किनहू न करौ न धरै को, षड् द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमाहिं बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता।।१२।।

भावार्थ : ब्रह्मा आदि किसी ने इस लोक को बनाया नहीं है; विष्णु या शेषनाग आदि किसी ने इसे टिका नहीं रखा है तथा महादेव आदि किसी से यह नष्ट नहीं होता; किन्तु यह छह द्रव्यमय लोक स्वयं से ही अनादि-अनन्त है; छहों द्रव्य नित्य स्व-स्वरूप से स्थित रहकर निरन्तर अपनी नई-नई पर्यायों (अवस्थाओं) से उत्पाद-व्ययरूप परिणमन करते रहते हैं। एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अधिकार नहीं है। यह छह द्रव्य स्वरूप लोक, वह मेरा स्वरूप नहीं है। वह मुझसे त्रिकाल भिन्न है, मैं उससे भिन्न हूँ; मेरा शाश्वत चैतन्य-लोक ही मेरा स्वरूप है ऐसा धर्मी जीव विचार करता है और स्वोन्मुखता द्वारा विषमता मिटाकर, साम्यभाव-वीतरागता बढ़ाने का अभ्यास करता है। यह ममलोक भावनाङ्कङ्क है।।१२।।

www.JainKosh.org

fppt.com

जगत संबंधी मान्यता

लोक को

ब्रह्मा ने बनाया है ।

विष्णु पालन करता है ।

शंकर संहार करता है ।

क्या यह सब सही है? क्यों?

www.JainKosh.org

fppt.com

ऐसे अनादि-अनंत लोक में जीव भ्रमण कर रहा है ।

बिना समता के दुःख उठा रहा है ।

- समता का अर्थ ?
  - समसत्तुबंधुवग्गो

www.JainKosh.org

fppt.com

जगत का ऐसा कौन-सा प्रदेश है जहाँ जन्म-मरण नहीं किया?

तेरो जनम हुओ नहीं जहाँ, ऐसो खेतर कोऊ न इहाँ ।

www.JainKosh.org

fppt.com

११. बोधिदुर्लभ भावना

अंतिम-ग्रीवकलौं की हद, पायो अनन्त विरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ।।१३।।

अन्वयार्थ : (अंतिम) अंतिम-नववें (ग्रीवकलौं की हद) ग्रैवेयक तक के (पद) पद (अनन्त विरियाँ) अनन्तबार (पायो) प्राप्त किये, तथापि (सम्यग्ज्ञान) सम्यग्ज्ञान (न लाधौ) प्राप्त न हुआ; (दुर्लभ) ऐसे दुर्लभ सम्यग्ज्ञान को (मुनि) मुनिराजों ने (निज में) अपने आत्मा में (साधौ) धारण किया है।

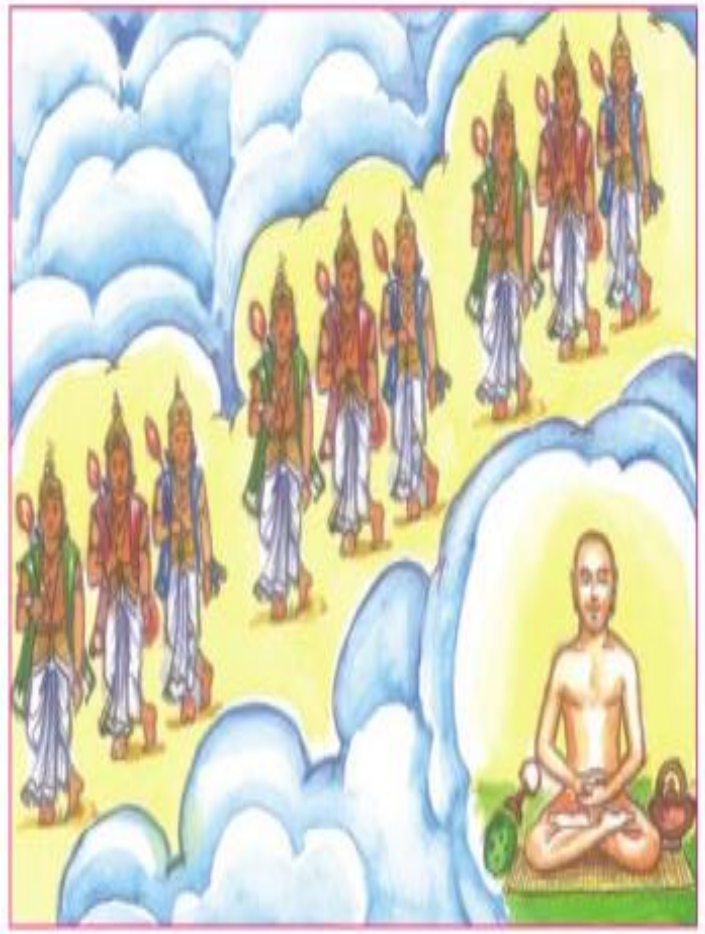

www.JainKosh.org

fppt.com

११. बोधिदुर्लभ भावना

अंतिम-ग्रीवकलौं की हद, पायो अनन्त विरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ।।१३।।

भावार्थ : मिथ्यादृष्टि जीव मंद कषाय के कारण अनेक बार ग्रैवेयक तक उत्पन्न होकर अहमिन्द्रपद को प्राप्त हुआ है, परन्तु उसने एकबार भी सम्यग्ज्ञान प्राप्त नहीं किया; क्योंकि सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना वह अपूर्व है; उसे तो स्वोन्मुखता के अनन्त पुरुषार्थ द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है और ऐसा होने पर विपरीत अभिप्राय आदि दोषों का अभाव होता है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान आत्मा के आश्रय से ही होते हैं। पुण्य से, शुभराग से, जड़ कर्मादि से नहीं होते। इस जीव ने बाह्य संयोग, चारों गति के लौकिक पद अनन्तबार प्राप्त किये हैं, किन्तु निज आत्मा का यथार्थ स्वरूप स्वानुभव द्वारा प्रत्यक्ष करके उसे कभी नहीं समझा, इसलिये उसकी प्राप्ति अपूर्व है।

बोधि अर्थात् निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता; उस बोधि की प्राप्ति प्रत्येक जीव को करना चाहिए। सम्यग्दृष्टि जीव स्व-सन्मुखतापूर्वक ऐसा चिंतवन करता है और अपनी बोधि और शुद्धि की वृद्धि का बारम्बार अभ्यास करता है। यह ममबोधि-दुर्लभ भावनाङ्गङ्ग है।।१३।।

www.JainKosh.org

fppt.com

१२. धर्म भावना

जो भाव मोहतैं न्यारे, दृग-ज्ञान-व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारे, तब ही सुख अचल निहारे।।१४।।

अन्वयार्थ : (मोह तैं) मोह से (न्यारे) भिन्न, (सारे) साररूप अथवा निश्चय (जो) जो (दृग-ज्ञान-व्रतादिक) दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय आदिक (भाव) भाव हैं, (सो) वह (धर्म) धर्म कहलाता है। (जबै) जब (जिय) जीव (धारै) उसे धारण करता है, (तब ही) तभी वह (अचल सुख) अचल सुख मोक्ष (निहारै) देखता है, प्राप्त करता है।

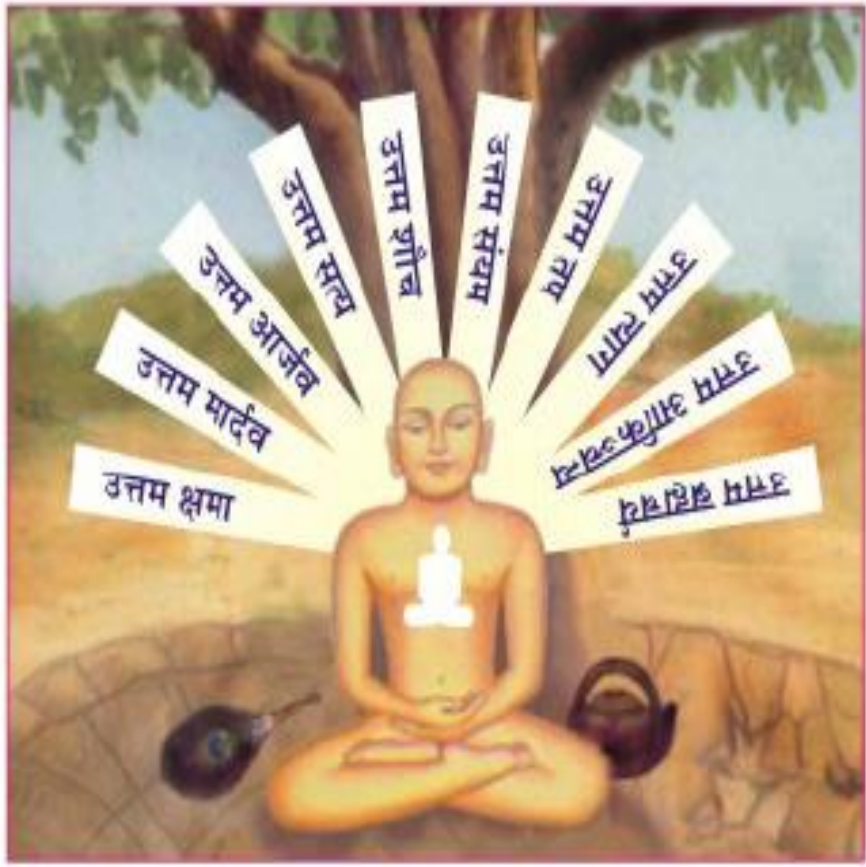

www.JainKosh.org

fppt.com

१२. धर्म भावना

जो भाव मोहतैं न्यारे, दृग-ज्ञान-व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारे, तब ही सुख अचल निहारे।।१४।।

भावार्थ : मोह अर्थात् मिथ्यादर्शन अर्थात् अतत्त्वश्रद्धान; उससे रहित निश्चयसम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र (रत्नत्रय) ही साररूप धर्म है। जब जीव निश्चय रत्नत्रयस्वरूप धर्म को स्वाश्रय द्वारा प्रकट करता है, तभी वह स्थिर, अक्षयसुख (मोक्ष) प्राप्त करता है। इस प्रकार चिंतवन करके सम्यग्दृष्टि जीव स्वोन्मुखता द्वारा शुचि की वृद्धि बारम्बार करता है। वह 'धर्म भावना' है।।१४।।

www.JainKosh.org

fppt.com

आत्मानुभवपूर्वक भावलिंगी मुनि का स्वरूप

सो धर्म मुनिनकरि धरिये, तिनकी करतूत उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी।।१५।।

अन्वयार्थ : (सो) ऐसा रत्नत्रय (धर्म) धर्म (मुनिनकरि) मुनियों द्वारा (धरिये) धारण किया जाता है, (तिनकी) उन मुनियों की (करतूत) क्रियाएँ (उचरिये) कही जाती हैं, (भवि प्रानी) हे भव्यजीवो! (ताको) उसे (सुनिये) सुनो और (अपनी) अपने आत्मा के (अनुभूति) अनुभव को (पिछानी) पहिचानो।

भावार्थ : निश्चयरत्नत्रयस्वरूप धर्म को भावलिंगी दिगम्बर जैन मुनि ही अंगीकार करते हैं, अन्य कोई नहीं। अब, आगे उन मुनियों के सकलचारित्र का वर्णन किया जाता है। हे भव्यो! उन मुनिवरों का चारित्र सुनो और अपने आत्मा का अनुभव करो।।१५।।

www.JainKosh.org

fppt.com